



UG SEM 2 SANSKRIT CORE

SKMU DUMKA



BY DR. D.K. MISHRA, S.P. COLLEGE DUMKA

प्र०:— नास्तिक दर्शन के रूप में बौद्ध-दर्शन का परिचय दीजिए

‘दर्शन’ शब्द की निष्पत्ति ‘दृश्’ धतु से हुई है। ‘दृश’ का अर्थ है देखना। अतः “दृश्यते अनेन इति दर्शनम्” अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाए वही दर्शन है। यहाँ दर्शन से अभिप्राय ‘आत्म-दर्शन’ से ही है। दर्शन सम्पूर्ण विश्व और जीवन की व्याख्या तथा मूल्य निर्धारित करने का प्रयास है।

भारतीय दर्शन दुःख की आधारशिला पर प्रतिष्ठित है। समस्त दर्शन दुःख निवृत्ति के उपायों की खोज में लगा हुआ है क्योंकि संसार में प्राणी – दैहिक, दैविक और भौतिक – त्रिविधात्मक दुःखों से ग्रस्त है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह सुख की प्राप्ति करे। समस्त दर्शनों का लक्ष्य है कि किसी उपाय से सर्वोच्च सुख की प्राप्ति का उपाय बताये जो इस जगत् के दुःखों का आत्यन्तिक निवारण करने में समर्थ हो।

भारतीय दर्शन के सामान्यतः दो भेद हैं – आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन। वेदों की सत्ता को स्वीकार करने वाले तथा ईश्वर को मानने वाले आस्तिक दर्शन की श्रेणी में रखे गये हैं। जैसे – न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त। वेदों को प्रमाण न मानने के कारण, वेद विरोधी होने के कारण तथा ईश्वर को न मानने के कारण या सिद्ध पुरुष को ही ईश्वर मानने वाले दर्शनों को नास्तिक दर्शन कहते हैं। इसके अन्तर्गत विशेषतः तीन दर्शनों को स्वीकार किया गया है – चार्वाकदर्शन, जैनदर्शन और बौद्ध दर्शन। बौद्ध दर्शन एक नास्तिक दर्शन है क्योंकि यह वेदों के प्रामाण्य को नहीं स्वीकारता तथा बुद्ध को अपना ईश्वर मानता है।

बौद्ध दर्शन भगवान बुद्ध द्वारा उपदिष्ट प्रमुख दार्शनिक सिद्धान्तों पर आधारित है। भगवान् बुद्ध के उपदेश मौखिक थे और उनके शिष्य उन्हें याद रख पाठ किया करते थे। बुद्ध निर्वाण के बाद उनके उपदेशों एवं सिद्धान्तों तथा दार्शनिक विचारों को ग्रन्थों का रूप दिया गया। पालि भाषा में लिखित ‘विनयपिटक’ और ‘सुत्तपिटक’ बौद्ध दर्शन के आधारभूत ग्रन्थ हैं।

Notes for UG SEM 2 (Sanskrit Core)SKMU Dumka

बौद्ध-दर्शन आध्यात्मिक अद्वैतवाद या निरपेक्षतत्त्ववाद है। इनके अनुसार परमतत्त्व निर्वाण है, जो अतीन्द्रिय, बुद्धि-विकल्पातीत एवं अनिर्वचनीय है। बोधि से इस दुःख रूप अविद्याजन्य संसारचक्र की निवृत्ति होती है। बौद्धदर्शन का अद्वैतवाद उपनिषद् पर ही आधारित है। निश्चय ही बुद्ध उपनिषद् के ऋणी हैं। बुद्ध ने माना है कि वे किसी नये धर्म का उपदेश नहीं दे रहे अपितु प्राचीन सम्बुद्धों एवं ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत सत्य का उन्होंने साक्षात् अनुभव किया है। वे अपने उन्हीं अनुभव का उपदेश बौद्धदर्शन में करते हैं।

बुद्ध द्वारा उपदिष्ट दार्शनिक सिद्धान्तों में – चार आर्यसत्य, आर्य अष्टांगिकमार्ग, प्रतीत्यसमुत्पाद, अव्याकृत प्रश्नों पर मौन, अनात्मवाद और निर्वाण प्रमुख हैं। दुःख, दुःख-समुदय, दुःख निरोध और दुःख-निरोध-मार्ग ये चार बुद्धोपदिष्ट आर्य सत्य हैं। सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि – ये आठ आर्य अष्टांगिक मार्ग हैं। प्रतीत्यसमुत्पाद बुद्ध के उपदेशों का आधारभूत सिद्धान्त है। बौद्ध दर्शन का यह केन्द्रिय सिद्धान्त है।

कारण-कार्य-शृंखला रूप प्रतीत्यसमुत्पाद द्वादशाङ्क-चक्र है जिसे भवचक्र, संसारचक्र, जन्ममरणचक्र और धर्मचक्र भी कहा जाता है। प्रथम अंग द्वितीय अंग का कारण है, द्वितीय अंग तृतीय अंग का कारण है और इस प्रकार यह द्वादशाङ्क चक्र चलते रहता है। ये द्वादश अंग हैं – अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति और जरा-मरण। मरण इस चक्र का अन्त नहीं है। मरण के बाद भी अविद्या और कर्म संस्कार रहते हैं जो नए जन्म का कारण बनते हैं और यह जन्म-मरण-चक्र चलता रहता है।

बौद्धदर्शन की मुख्य दार्शनिक बातें इस प्रकार कही जा सकती हैं –

1. पदार्थ विज्ञान – क. आलय विज्ञान ख. प्रकृति विज्ञान।
2. प्रमाण – प्रत्यक्ष प्रमाण और अनुमान प्रमाण।

By Dr.D.K. Mishra, (HOD) Sanskrit, S.P. College Dumka

email- dkmishraspcd@gmail.com

3. प्रमुख सिद्धान्त – असत्कार्यवाद, चारआर्यसत्य, प्रतीत्यसमुत्पादवाद, क्षणिकत्व(अनित्य)वाद, अनात्मवाद और शून्यवाद।
4. ईश्वर/पुरुष या आत्मा – ईश्वर तथा आत्मा दोनों का अभाव है। विज्ञानमात्र ही आत्मा है – ‘नित्यविज्ञानमेवात्मा।’ भगवान् बुद्ध ने ईश्वर का कोई उल्लेख नहीं किया है।
5. सृष्टि-प्रक्रिया – परमाणुओं में क्रिया के फलस्वरूप समुदायोत्पत्ति से सृष्टि होती है। ये परमाणु पृथिवी, जल, तेज और वायु के भेद से चार हैं।
6. निर्वाण या मोक्ष – अविद्या, रागादि के निरोध से जन्ममरण के स्रोत का सर्वथा अभाव ही बौद्ध दर्शन में निर्वाण या मोक्ष है।

निश्चय ही बौद्ध दर्शन उपर्युक्त विशेषताओं के कारण एक नास्तिक दर्शन है। इसके चार सम्प्रदाय काफी प्रचलित हैं— **सौत्रान्तिक, वैभाषिक, योगाचार और माध्यमिक**। सौत्रान्तिक वाह्यार्थानुमेयवाद है। वैभाषिक वाह्यार्थ प्रत्यक्षवाद है। योगाचार विज्ञानवाद है। माध्यमिक शून्यवाद पर आधारित है। उपर्युक्त चारों सम्प्रदाय **हीनयान** और **महायान** नामक भेदों में बँटा है। हीनयान के अन्तर्गत – वाह्यप्रत्यक्षवाद तथा वाह्यार्थानुमेयवाद आता है। महायान के अन्तर्गत विज्ञानवाद और शून्यवाद का समावेश है।

बौद्ध धर्म एवं दर्शन का यद्यपि ब्राह्मण धर्म की कुछ संकीर्णताओं के विरोध में भारत में आविर्भाव हुआ फिर भी मूलतः यह हिन्दु धर्म का ही अंश प्रतीत होता है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, सर्वभूतानुकम्पा आदि विशेषताएँ ब्राह्मण धर्म के धर्म-सूत्रों तथा प्राचीन स्मृतिग्रन्थों से लिया गया है।

निःसन्देह कहा जा सकता है कि बौद्ध दर्शन अपनी आन्तरिक विशेषताओं के कारण नास्तिक दर्शनों में श्रेष्ठ स्वीकार किया गया है। वेदों की सत्ता को न स्वीकारना, आत्मा को नहीं मानना तथा ईश्वर के प्रति उदासीनता तथा सिद्ध पुरुष गौतम बुद्ध को ही ईश्वर मानने के कारण बौद्ध दर्शन एक नास्तिक दर्शन है।

प्र०:— बुद्धोपदिष्ट 'चार आर्य सत्य' की विवेचना करें।

भगवान बुद्ध ने अपने जीवन काल में न तो किसी ग्रन्थ की रचना की और न करायी। वे एक सच्चे धर्मोपदेशक थे। उनके उपदेश ही बौद्ध दर्शन के रूप में जाने जाते हैं। इन उपदेशों का सारांश उनके द्वारा प्रस्थापित 'चार-आर्य-सत्य' के सिद्धान्त में निहित है। ये चार आर्य आर्य सत्य ही बौद्ध दर्शन के मूल आधार के रूप में जाने जाते हैं। बोध प्राप्ति के बाद वाराणसी के सारनाथ नामक स्थान में प्रथम उपदेश के रूप में भगवान् गौतम बुद्ध ने पहली बार "चार आर्य सत्य" के सिद्धान्त को उद्घाटित किया। दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध और दुःख-निरोध-मार्ग, ये चार बुद्धोपदिष्ट आर्य सत्य हैं।

प्रथम आर्य सत्य – प्रथम आर्य सत्य के अनुसार **संसार दुःखमय** है। भगवान बुद्ध के अनुसार जन्म लेना दुःख है। जरा (बुढ़ापा) दुःख है। मरण दुःख है। शोक करना दुःख है। विलाप करना दुःख है। इच्छा की पूर्ति न होना दुःख है। प्रिय-वियोग दुःख है तथा अप्रिय संयोग भी दुःख है। संक्षेप में " पंच उपादान स्कन्ध " ही दुःख है। अर्थात् सम्पूर्ण विश्व दुःखमय है। यह लौकिक अनुभव से सिद्ध है। संसार के सर्व पदार्थ अनित्य और नश्वर होने के कारण दुःख-रूप हैं। लौकिक सुख भी वस्तुतः दुःख से घिरा है। इस सुख को प्राप्त करने के प्रयास में दुःख है, प्राप्त हो जाने पर यह नष्ट न हो जाय यह विचार दुःख देता है और नष्ट होने पर दुःख है ही। काम, क्रोध, लोभ, मोह, रोग, शोक, जन्म, जरा और मरण सब दुःख है। अप्रिय संयोग दुःख है, प्रिय वियोग दुःख है, इच्छा पूर्ण न होना दुःख है, स्वार्थ, हिंसा, संघर्षादि दुःख है। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान ये पाँच स्कन्ध दुःख हैं। संक्षेप में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त सारा जीवन ही दुःख है और मृत्यु भी दुःख का अन्त नहीं है क्योंकि मृत्यु के बाद पुनर्जन्म है और जन्म के बाद मृत्यु है। इस प्रकार यह जन्म-मृत्यु-चक्र या भवचक्र चलता रहता है तथा व्यक्ति इसमें फँस कर दुःख भोगता रहता है।

बौद्धग्रन्थों में इन समस्त दुःखों को तीन वर्गों में रखा गया है –

1. दुःख-दुःखता
2. विपरिणाम-दुःख
3. संसार दुःख।

संयुतनिकाय के अनुसार दुःख का ही भाव तथा दुःख का ही अभाव होता है। अर्थात् जन्म और मरण दोनों दुःख ही है। इस गंभीर तथ्य को समझाने के लिए भगवान् बुद्ध ने अत्यन्त मार्मिक उपदेश दिया है। इससे स्पष्ट होता है कि दुःख के सत्यस्वरूप की शिक्षा ही भगवान् बुद्ध के उपदेश का प्रथम सोपान है। इसको भली-भाँति समझे बिना अन्य आर्य सत्यों का ज्ञान असम्भव है।

द्वितीय आर्य सत्य – ‘दुःख-समुदय’ द्वितीय आर्य सत्य है। ‘दुःख-समुदय’ का अर्थ है –दुःख उत्पन्न होता है, इसका उदय या समुदय होता है। जो उत्पन्न होता है उसे कार्य कहते हैं और प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। बिना कारण के कोई कार्य नहीं हो सकता है। कार्य सदा कारण सापेक्ष होता है। कारण के होने पर ही कार्य होता है– यह नियम अटल है। कार्य उत्पत्ति के लिए हेतु-प्रयत्न सामग्री आवश्यक है। कार्य कारण की लम्बी श्रृंखला है जो द्वादशांक-चक्र के रूप में घूमती रहती है। यह प्रतीत्यसमुत्पादचक्र ही दुःख-समुदय का कारण है और अविद्या इसकी जननी है। अविद्याजन्य तृष्णा के कारण संसार में आसक्ति होती है और भवचक्र चलता रहता है। दुःख समुदय को कहीं-कहीं ‘दुःख-समुदाय’ भी कहा गया है। दुःख समुदाय के कुल बारह अंग हैं। अतः इसे द्वादश निदान भी कहते हैं। ये द्वादश-निदान निम्नलिखित हैं – 1. अविद्या 2.संस्कार (भूत जीवन) 3. विज्ञान 4. नामरूप, 5. षडायतन 6. स्पर्श 7. वेदना 8. तृष्णा 9. उपादान (वर्तमान जीवन) 10. भव 11. जति 12. जरा-मरण (भविष्य जीवन)।

तृतीय आर्य सत्य – ‘दुःख-निरोध’ तृतीय आर्यसत्य है। कारण के होने पर ही कार्य उत्पन्न होता है, अतः कारण के न रहने पर कार्य भी नहीं रह सकता और न पुनः उत्पन्न हो सकता। दुःख कार्य है अतः उसके कारण को दूर कर देने पर दुःख का निरोध सम्भव है। अविद्या के नाश से उससे चलने वाला द्वादशांक प्रतीत्यसमुत्पाद-चक्र भी नहीं चलता। यही दुःख निरोध

है। तृष्णा के सर्वथा क्षय होने पर अनासक्ति रूप निर्विकल्पावस्था होती है। अविद्या निवृत्ति से अपरोक्षानुभूति द्वारा दुःख का आत्यान्तिक निरोध हो जाता है। यही निर्वाण है। यही अमृत पद है। निर्वाण शब्द की व्युत्पत्ति है निर् + वाण (बुझ जाना)। अर्थात् विज्ञान के निरोध से निर्वाण की अवस्था में सब कुछ शान्त हो जाता है। यह ठीक वैसा ही है जैसा कि दीपक का बुझ जाना। निर्वाण दुःखों के नाश की अवस्था है। निर्वाण से बढ़कर कोई सुख नहीं है। यही परम शान्ति है। इसे ही शान्ति, शिव या क्षेम भी कहा गया है। औपधिक और अनौपधिक भेद से निर्वाण के भी दो प्रकार हैं। तृष्णा के निरोध से साधक को शरीर रहने पर भी निर्वाण लाभ हो जाता है। साधक की इन्द्रियाँ कार्य तो करती हैं परन्तु विषयों के प्रति राग-द्वेष नहीं होता है। अनौपाधिक निर्वाण में साधक के पूर्व कर्मों का संस्कार पूर्णतः नष्ट हो जाता है। यह पाँच स्कन्धों का पूर्ण विनाश है। निर्वाण की ये दोनों अवस्थाएँ अन्य दर्शनों में जीवनमुक्ति तथा चरममुक्ति के रूप में जानी जाती है।

चतुर्थ आर्य सत्य – 'दुःख निरोध मार्ग' को चतुर्थ आर्य सत्य के रूप में जाना जाता है। यह निर्वाण प्राप्ति का मार्ग है। जिन कारणों से दुःखों की उत्पत्ति होती है उन्हीं कारणों के नाश का उपाय ही निर्वाण मार्ग है। इन मार्गों को अष्टांगिक-मार्ग के नाम से भी जाना जाता है। ये अष्टांगिक मार्ग हैं – 1. सम्यक् दृष्टि 2. सम्यक् संकल्प (प्रज्ञा) 3. सम्यक् वाक् 4. सम्यक् कर्मान्त 5. सम्यक् आजीव 6. सम्यक् व्यायाम (शील) 7. सम्यक् स्मृति और 8. सम्यक् समाधि (समाधि)। ये अष्टांगिक मार्ग प्रज्ञा, शील और समाधि नामक त्रिरत्नों में विभाजित हैं। यह अष्टांग मार्ग ही श्रेष्ठ है। इसी का अनुसरण करने से निर्वाण-लाभ हो सकता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि चारों आर्य सत्य बौद्ध दर्शन के चार स्तम्भ हैं जिनपर सम्पूर्ण बौद्ध दर्शन टिका है।

प्र०:— चार्वाक दर्शन का सामान्य पचिय देते हुए इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए

चार्वाक शब्द की व्युत्पत्ति 'चर्व्' नामक धातु से की गयी है, जिसका अर्थ है खाना या चबाना। इस प्रकार खाने—पीने और भोग विलास के देहवादी दृष्टिकोण को मानने वाले व्यक्तियों के लिए चार्वाक शब्द का प्रयोग हुआ है।

कुछ लोग 'चारुवाक्' के रूप में चार्वाक शब्द की व्युत्पत्ति मानते हैं। इनके अनुसार इस दर्शन की बातें अधिक लोकप्रिय थीं, क्योंकि 'श्रेयस्' की अपेक्षा 'प्रेयस्' अधिकांश लोगों के लिए अनुकूल होता है। अतः चार्वाक मत की बातें लोगों को चारु अर्थात् सुहावनी प्रतीत होती थी क्योंकि इसमें प्रेयस् को ही श्रेयस् स्वीकार किया है और इस आधार पर इसका नामकरण किया गया।

चार्वाक दर्शन को मानने वाले असुर लोग थे, इसलिए इसे आसुरी दर्शन भी कहते हैं। राक्षसी जातियों में असुर बालकों को इसका उपदेश दिया जाता था।

जगत्कर्ता ईश्वर को न मानने के कारण चार्वाक दर्शन को नास्तिक दर्शन भी कहते हैं। इस दर्शन में परलोक और पुनर्जन्म को मान्य नहीं किया गया है।

नास्तिक दर्शन के रूप में प्रसिद्ध चार्वाक दर्शन का एक नाम लोकायत भी है। लोक में अर्थात् संसार में स्वाभाविक रूप से फैले होने के कारण इसे लोकायत कहा गया है — "लोके आयतं विस्तृतं इति लोकायतम्।" आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में इस दर्शन को लोकायत ही कहा है — "सांख्य योगोलोकायतं चेति आन्वीक्षिकी।"

वृहस्पति द्वारा प्रणीत होने के कारण इस दर्शन को वार्हस्पत्य दर्शन भी कहते हैं। इस प्रकार चार्वाक दर्शन एक नास्तिक दर्शन है जिसे लोकायत या वार्हस्पत्य दर्शन भी कहते हैं।

चार्वाक दर्शन भारतवर्ष के प्राचीन दर्शनों में से एक है। ऋग्वेद, कठोपनिषद्, वाल्मीकि रामायण, महाभारत के मोक्षपर्व, प्रबोध-चन्द्रोदय, सर्वदर्शन संग्रह, नैषधीयचरितम् आदि ग्रन्थों में इसका संक्षिप्त परिचय प्राप्त होता है।

चार्वाक दर्शन की विशेषताएँ – चार्वाक दर्शन की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

1. चार्वाक दर्शन ने स्थापित मूल्यों पर प्रहार के साथ अपौरुषेय धर्मग्रन्थ वेदों के ऊपर भी सीधा प्रहार किया है। वैदिक क्रियाओं, आचार-विचार, यज्ञ-यागादि, श्राद्ध, दानादि का खण्डन किया है। चार्वाक के अनुसार-

अग्निहोत्रं त्रयो वेदाः त्रिदण्डम् भस्मगुण्ठणम्।

बुद्धि-पौरुष-हीनानां जीविका धातृनिर्मिता ॥

2. चार्वाक दर्शन परमेश्वर की सत्ता को विदीर्ण करता हुआ अपने मत के संस्थापक वृहस्पति मुनि का स्मरण करता है जिसके लिए केवल प्रत्यक्ष ही प्रमाण है जो अनुमान, अनुमिति, उपमिति, शब्दादि प्रमाणों का खण्डन कर इन्द्रिय सन्निकर्ष जन्य ज्ञान को ही ज्ञान मानता है। वेद-स्मृति, पुराणों की निन्दा कर सुख की अनुभूति करता है। इस दर्शन का सार है कि जब तक जीवन है सुख से जीओ। मृत्यु से बचना असम्भव है। जलने पर राख बनी देह का पुनरागमन कदापि संभव नहीं है –

यावज्जीवं सुखं जीवेत् नास्तिमृत्युरगोचरः।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कृतः ॥

3. चार्वाक के मतानुसार चार महाभूतों के परस्पर सहयोग से शरीर का आकार और चैतन्य उत्पन्न होता है। इनके अनुसार आकाश की गणना महाभूतों में नहीं होती है क्योंकि उसका प्रत्यक्ष नहीं होता है। इन्द्रिय सन्निकर्ष जन्य प्रत्यक्ष ही प्रमाण होता है। जब ये चार महाभूत परिणत होते हैं तो शरीर का आकार और चैतन्य उत्पन्न हो जाता है। विज्ञानघन चैतन्य इन्हीं भूतों से बाहर निकलकर शरीरों में दिखलाई पड़ता है। मृत्यु के

समय वह चैतन्य उनमें ही विलीन हो जाता है। अतः चैतन्य से युक्त शरीर ही आत्मा है। देह के अलावा और कोई आत्मा नहीं है। प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव होने के कारण ऐसा सिद्ध है। प्रत्यक्ष प्रमाण के अलावा अनुमानादि प्रमाणों की कोई सत्ता ही नहीं है क्योंकि उनका इन्द्रियजन्यसन्निकर्ष नहीं होता। शरीर के अतिरिक्त कोई आत्मा नहीं है। इस बात की पुष्टि कर चार्वाक ने आत्मा और परमात्मा का खण्डन कर दिया है।

4. चार्वाक के मतानुसार स्त्री आदि के आलिंगन आदि से समुत्पन्न सुख हीं पुरुषार्थ है। इसमें धर्मादि नियम स्वीकार्य नहीं है। संभोगादि से रोगादि का भय व्याप्त है, अतः उसे पुरुषार्थ कैसे माना जाय तो अनिवार्य रूप से मिले हुए सुख-दुःख से दुःख को अलग कर सुख का उपभोग हीं ग्राह्य है। जैसे मछली खाने वाला मछली से उसकी कठिन त्वचा और कण्टकों को निकाल, उपयोगी भाग का ग्रहण करता है। जैसे किसान समग्र धान्य को लाकर उससे भूसा निकालकर धान्य ग्रहण करता है। दुःख के भय से अनुकूल सुख का परित्याग उचित नहीं है। कोई भी व्यक्ति कांटों के भय से गुलाब, बेरफल, विल्वफलों का परित्याग नहीं करता। सभी सुख दुःखों से मिश्रित होते हैं। जो मौजूद सुख को अदृष्ट, जो किसी ने देखा ही नहीं है उस नरकादि के भय से छोड़ता है, वह पशुवत् मूर्ख है। अपने-पराये का विचार न कर अपने उपयोग की वस्तु को ग्रहण कर लेना चाहिए –

“त्याज्यं सुखं विषयसंगमजन्य पुंसाम्
दुःखोपसृष्टामिति मूर्ख विचारणैषा।
ब्रीहीञ्जिजहासति सितोत्तमतण्डुलाद्यान्
को नाम भोस्तुषकणोपहितान्हितार्थी।।”

5. चार्वाक मत में स्त्री के आलिंगन से प्राप्त सुख ही पुरुषार्थ है। कांटों से मिलने वाला दुःख हीं नरक है। लोक में प्रसिद्ध राजा ही परमेश्वर है और कोई परमेश्वर नहीं है।

देह के नाश को हीं मुक्ति कहा जाता है। ज्ञान से मुक्ति नहीं होती है। भूमि, जल, अग्नि और वायु ये चार महाभूत हीं सृष्टि के कारण हैं।

“अङ्गनालिङ्गनाजन्य सुखमेव पुमर्थता।

कण्टकादि व्यथाजन्यं दुःखं निरय उच्यते।।”

6. चार्वाक मतानुसार न तो स्वर्ग है और न अपवर्ग है और न कोई पारलौकिक आत्मा हीं है। वर्ण और आश्रम की क्रियाएँ भी कोई फल देने वाली नहीं है। यदि ज्योतिष्टोम यज्ञ में बलि देने से बकरा आदि जीव स्वर्ग जाते हैं तो यजमान अपने पिता की बलि क्यों नहीं देता, जिससे उसे भी स्वर्ग की प्राप्ति हो जाए। मरे हुए व्यक्तियों को यदि श्राद्ध से तृप्ति मिल जाती है, यदि यह कथन सत्य है तो तेल से बुझे हुए दीपक की लौ भी बढ़ जानी चाहिए। अतः ये सभी बातें कपोल-कल्पित हैं इनमें कुछ भी सत्य नहीं है। दूर-दराज जाने वाले लोगों को नाश्ता बाँधना व्यर्थ है, घर पर ही उनका श्राद्ध कर दिया जाए तो रास्ते की भूख स्वतः हीं मिट जाएगी। स्वर्ग में स्थित यदि पितर दान देने से वहाँ तृप्त हो जाते हैं तो घर के छत पर बैठे लोग उस प्रकार के दान से तृप्त क्यों नहीं हो जाते हैं। अतएव जब तक जीओ सुख से जीओ, कर्ज लेकर धृतपान करो, मरने के बाद यह देह फिर कर्ज उतारने के लिए नहीं आने वाली है –

“ यावज्जीवेत्सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा धृतं पिबेत्।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।”

7. यदि आत्मा शरीर से निकलकर परलोक जा सकती है तो भाई-बन्धुओं के दुःखी होने पर स्नेह से व्याकुल होकर पुनः शरीर में क्यों नहीं लौट आती ? अतः आत्मा-परमात्मा, लोक-परलोक की बातें पाखण्डियों ने अपनी जीविका चलाने के लिए बनाई है। मृत व्यक्तियों का प्रेत-कार्य कराना ब्राह्मणों ने अपनी रोजी-रोटी के लिए चलाया है। तीनों वेदों को बनाने वाले भौंड-धूर्त और निशाचर हैं।

Notes for UG SEM 2 (Sanskrit Core)SKMU Dumka

चार्वाक मतानुसार चार्वाक का मत ही मानने योग्य और रमणीय है। अतः बहुत से प्राणियों के कल्याण के लिए चार्वाक का मत ही मानने योग्य और रमणीय है।

SKMU D K MISHRA

प्र०:— मीमांसा दर्शन का सामान्य परिचय दीजिए।

भारतीय षड् आस्तिक दर्शनों में महर्षि जैमिनि रचित मीमांसासूत्र “मीमांसादर्शन” का आधार है। अतः इसे जैमिनी दर्शन भी कहते हैं। मीमांसा अनीश्वरवादी दर्शन है, किन्तु यह वेदों की नित्यता को स्वीकार करता है। यह दर्शन वेद—विश्वासी होने के कारण ही आस्तिक है। वेद और उसके वाक्य की नित्यता प्रतिपादन करना इस दर्शन का प्रमुख उद्देश्य है। इस दर्शन में मन्त्र की सत्ता सर्वोपरि मानी गई है। कर्म और कर्मफल के अतिरिक्त किसी बात को बताने में यह दर्शन एकदम मौन है। मीमांसा दर्शन के अनुसार कर्म और उसके प्रतिपादक वचनों के अतिरिक्त न तो कोई देवता है और न कोई ब्रह्म—सत्ता।

मीमांसक ‘शब्द’ को नित्य मानते हैं। वेदों की प्रामाणिकता पर विश्वास करते हैं। उनकी दृष्टि में वेद कल्पान्त में भी अविनश्वर हैं। मीमांसा दर्शन के सिद्धान्तों की आधारभूमि श्रुति है। वैदिक साहित्य के कर्मकाण्ड के प्रतिनिधि ग्रन्थों की कर्मभावना को लेकर मीमांसादर्शन की रचना हुई।

मीमांसादर्शन दो भागों में विभक्त है — पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा। पूर्वमीमांसा को यज्ञप्रधान दर्शन होने के कारण यज्ञविद्या, कर्मप्रधान दर्शन होने के कारण कर्ममीमांसा तथा द्वादश अध्यायी होने के कारण द्वादशलक्षणी भी कहा गया है जबकि उत्तरमीमांसा को वेदान्त कहते हैं। मीमांसा दर्शन में प्रायः पूर्वमीमांसा की बात होती है।

परा और अपरा नामक दो विद्याओं में अपरा विद्या का प्रतिपादक दर्शन पूर्वमीमांसा है जबकि परा विद्या का प्रतिपादक दर्शन उत्तर मीमांसा है।

मीमांसा बहुत्ववादी वस्तुवाद है। इस जगत् के जड़ पदार्थ तथा अनेक जीवात्मा, बद्ध और मुक्त सब सत्य हैं। इस जगत् की न तो सृष्टि हुई है और न इसका प्रलय होगा। जगत् के विभिन्न पदार्थ और व्यक्ति आते—जाते और बदलते रहते हैं, किन्तु यह जगत् सदा वैसे ही चलता रहेगा —“**न कदाचिदनीदृशं जगत्।**”

मीमांसा में नित्य और अपौरुषेय वेद का महत्त्व है। ईश्वर के लिए मीमांसा में कोई स्थान नहीं है। बाद के कुछ मीमांसक ईश्वर की सत्ता मानते हैं।

कुछ परमाणुवाद को मानते हैं जबकि कुछ परमाणुवाद को मानते हैं कुछ परमाणु संघात निर्मित जगत् को स्वीकार करते हैं। मीमांसा में धर्म का, कर्मवाद का, अपूर्व का, स्वर्ग का, मोक्ष का विवेचन प्राप्त होता है।

मीमांसा में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, परतन्त्रता, शक्ति, सादृश्य और संख्या – ये आठ पदार्थ माने गए हैं।

धर्म मीमांसा का जिज्ञासा विषय है। जैमिनी ने अपने प्रथम सूत्र में इसे ही सूचित करते हुए कहा है – **“अथातो धर्मजिज्ञासा।”** धर्म क्रियात्मक वचन या विधि वाक्य द्वारा लक्षित अर्थ है। वेद क्रियापरक विधिवाक्य है। जो वेद भाग स्पष्टतः क्रियापरक नहीं है वह अर्थवाद है। कर्म तीन हैं – नित्य, नैमित्तिक और वेदविहित।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में मीमांसा का आग्रह धर्म पर था और लक्ष्य था प्राप्य स्वर्ग। बाद में स्वर्ग के स्थान पर मोक्ष या अपवर्ग को जीवन का चरम पुरुषार्थ स्वीकार किया गया। प्रभाकर और कुमारिल भट्ट दोनों ने मोक्ष को चरम पुरुषार्थ माना है। मूल भाव इस प्रकार है –

“विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे। श्रेयः प्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्धधारिणे।।”

प्र०:- प्रतिभिज्ञा-दर्शन के प्रतिपाद्य विषय पर प्रकाश डालिए।

‘दर्शन’ शब्द की निष्पत्ति ‘दृश्’ धातु से हुई है। दृश् का अर्थ है – देखना। अतः *“दृश्यते अनेन इति दर्शनम्।”* अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाय वही दर्शन है। यहाँ दर्शन से अभिप्राय आत्म-दर्शन से ही है क्योंकि दर्शन सम्पूर्ण विश्व और जीवन की व्याख्या तथा मूल्य निर्धारित करने का प्रयास है।

भारतीय आस्तिक दर्शनों में वैष्णव दर्शन और शैव दर्शन का अपना विशेष महत्त्व है। वैष्णव दर्शन में मुक्त पुरुष को ईश्वर का दास का रूप देते हैं। इसी बात पर शैव दर्शन का मत उनसे भिन्न हो जाता है। उनका कहना है कि मुक्त होने पर भी दासता रह ही गई तो मुक्ति का अर्थ ही क्या रहा? मुक्ति तो वह है जो सर्वोच्च पद पर पहुँचा दे। इसलिए माहेश्वर दर्शन में मुक्त को साक्षात् ईश्वर ही माना जाता है।

महेश्वर सम्प्रदाय में बहुत से आवान्तर भेद हैं। जैसे – पाशुपत, शैव, कालामुख, कापालिक आदि धार्मिक दृष्टिकोण से अलग-अलग हैं। दार्शनिक दृष्टिकोण से भी माहेश्वर सम्प्रदाय चार भेदों में बँटा हुआ है। पाशुपतदर्शन, शैवदर्शन, वीरशैवदर्शन और प्रत्यभिज्ञादर्शन। प्रत्यभिज्ञा दर्शन का प्रचार-प्रसार कश्मीर में हुआ इसलिए इसे *काश्मीरीशैवसिद्धान्त* भी कहते हैं। यही दर्शन त्रिक-दर्शन, स्पन्ददर्शन भी कहलाता है। प्रत्यभिज्ञादर्शन *स्वातन्त्र्यवाद*, *ईश्वराद्वयवाद* तथा *शिवाद्वैत* के नाम से भी विख्यात है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन छत्तीस (36) तत्त्वों को स्वीकारता है, जो शिवतत्त्व, विद्यातत्त्व और आत्मतत्त्व के रूप में विभक्त है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन का आधारभूत सिद्धान्त प्रत्यभिज्ञा है। प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है – पहचान। अपने विस्मृत स्वरूप को पहचान लेना और प्राप्त कर लेना। प्रत्यभिज्ञा मोक्ष साधन है और स्वयं मोक्ष रूप भी है। प्रत्यभिज्ञा पूर्वसंस्कार और वर्तमान इन्द्रिय संवेदन के तादात्म्यीकरण से उत्पन्न ज्ञान है। यह दर्शन *“तत् त्वमसि”* महावाक्य को प्रत्यभिज्ञा द्वारा प्रकाशित करता है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन का मूल स्रोत शैवागम या तन्त्र है। दार्शनिक दृष्टि से *शिवसूत्र* इस मत के आधार सूत्र हैं। आचार्य वसुगुप्त की *स्पन्दकारिका*, सोमानन्द

की शिवदृष्टि, उत्पलदेव की प्रत्यभिज्ञाकारिका, अभिनवगुप्त की प्रत्यभिज्ञाविमर्शनी, परमार्थसार और तन्त्रालोक तथा क्षेमराज की शिवसूत्र विमर्शनी और स्पन्दसन्दोह प्रत्यभिज्ञा दर्शन के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में शिव ही परमतत्त्व है जो परमात्मा, परमेश्वर, परमशिव, अनुत्तर आदि नामों से जाना जाता है। परमात्म तत्त्व होने के कारण शिव शुद्ध चैतन्य है। चैतन्य स्वरूप परमतत्त्व को शक्तिरूप मानना इस दर्शन की विशेषता है। शिव और शक्ति परस्पर अलग नहीं रह सकते। चन्द्र और चन्द्रिका के समान उनमें कोई अन्तर नहीं। शिव प्रकार रूप है और शक्ति विमर्श रूप।

प्रत्यभिज्ञादर्शन की मान्यता है कि परमेश्वर की इच्छामात्र से संसार का निर्माण होता है। अपने संवेदन (अनुभव) के द्वारा अनुमान करने से और शैवागमों से सिद्धि होने वाली, प्रत्यक (सबों के ऊपर) आत्मा के साथ तादात्म्य (एकरूपता) होने पर नाना प्रकार के मान (ज्ञान) और मेय (ज्ञेय) आदि के भेदों और अभेदों को धारण करने वाला परमेश्वर ही है। वह ऐसी स्वतन्त्रता धारण करता है जिसमें किसी दूसरे की मुखापेक्षिता नहीं रहती। वह अपनी आत्मा पर आकाशादि भावों को उसी प्रकार अवभासित (व्यक्त) करता है जिस प्रकार किसी दर्पण पर प्रतिबिम्ब पड़ता है। अर्थात् जिस प्रकार किसी दर्पण पर प्रतिबिम्ब पड़ता है उसी प्रकार परमेश्वर अपने ही स्वरूप में सृष्टि, स्थिति, संहार आदि संसार की सभी क्रियाओं को व्यक्तकरता है क्योंकि चेतन-अचेतन सभी पदार्थ परमेश्वर के अन्तर्गत ही हैं, कोई उससे पृथक् नहीं। यही अद्वैत तत्त्व है। इस दर्शन में "माया" को न मानकर सब पदार्थों का ईश्वर में 'अवभास' मानते हैं। इसलिए यह दर्शन वस्तुवादी प्रत्ययवाद कहलाता है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन के प्रतिपाद्य विषयों में मुख्यतः तत्त्वविचार – शिवतत्त्व, विमर्शशक्तितत्त्व, सदाशिवतत्त्व, ईश्वरतत्त्व, सद्विद्यातत्त्व, मायातत्त्व, पुरुषतत्त्व, प्रकृतितत्त्व, बुद्धितत्त्व, अहंकारतत्त्व, मनतत्त्व, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्राएँ, पञ्चभूत, व्युत्क्रमसृष्टि, जीवन्मुक्ति, ब्रह्म एवं माया के स्वरूप का विचार आदि किया गया है।

निश्चितरूप से प्रत्यभिज्ञादर्शन शैवदर्शनों में अपने प्रतिपाद्य विषय की गम्भीरता के कारण महत्त्वपूर्ण एवं लोकप्रिय है।

प्र०:- तर्कसंग्रह के अनुसार निम्नलिखित पर संक्षेप में टिप्पणी लिखें-

1. पृथिवी 2. जल 3. तेज 4. वायु 5. आकाश 6. काल 7. दिक् 8. आत्मा 9. मन

उ०:- **1. पृथिवी :-** तर्कसंग्रह के अनुसार नौ द्रव्यों में प्रथम द्रव्य पृथिवी है। यह मूर्त द्रव्य है। इसका लक्षण बताते हुए अन्नं भट्ट कहते हैं - 'गन्धवती पृथिवी'। अर्थात् गन्ध के समवायिकारण को पृथिवी कहते हैं। पृथिवी गन्धवती होती है। यह पृथिवी नित्या और अनित्या के भेद से दो प्रकार की होती है। नित्या पृथिवी परमाणुरूपा होती है जबकि अनित्या पृथिवी कार्यरूपा। शरीर, इन्द्रिय और विषय के भेद से अनित्या पृथिवी पुनः तीन प्रकार की होती है। हमलोगों का शरीर ही पृथिवी का शरीर है। पृथिवी का इन्द्रिय गन्ध को ग्रहण करने वाला घ्राण है, जो नासिका के अग्रभाग में रहता है। पृथिवी का विषय मिट्टी, पत्थर आदि होते हैं।

2. जल :- तर्कसंग्रह के अनुसार नौ द्रव्यों में द्वितीय द्रव्य जल है। यह मूर्त द्रव्य है। इसका लक्षण बताते हुए अन्नं भट्ट कहते हैं - 'शीतस्पर्शवत्य आपः'। अर्थात् शीत स्पर्श का जो समवायिकारण है, उसे जल कहते हैं। जिसका स्पर्श शीतल है उसे जल (आप) कहते हैं। यह जल नित्य और अनित्य के भेद से दो प्रकार का होता है। नित्य जल परमाणुरूप होता है जबकि अनित्य जल कार्यरूप। शरीर, इन्द्रिय और विषय के भेद से अनित्य जल पुनः तीन प्रकार का होता है। जल का शरीर वरुणलोक में रहता है। जल का इन्द्रिय रस को ग्रहण करने वाला रसन है, जो जिह्वा के अग्रभाग में रहता है। जल का विषय नदी, समुद्र आदि होते हैं।

3. तेज :- तर्कसंग्रह के अनुसार नौ द्रव्यों में तृतीय द्रव्य तेज है। यह मूर्त द्रव्य है। इसका लक्षण बताते हुए अन्नं भट्ट कहते हैं - 'उष्णस्पर्शवतेजः'। अर्थात् जिस द्रव्य में उष्ण स्पर्श

रहता है, उसे तेज कहते हैं। यह तेज नित्य और अनित्य के भेद से दो प्रकार का होता है। नित्य तेज परमाणुरूप होता है जबकि अनित्य तेज कार्यरूप। शरीर, इन्द्रिय और विषय के भेद से अनित्य तेज पुनः तीन प्रकार का होता है। तेज का शरीर सूर्यलोक में प्रसिद्ध है। तेज का इन्द्रिय रूप को ग्रहण करने वाला नेत्र है, जो काली तारा के अग्रभाग में रहता है। तेज का विषय भौम, दिव्य, उदर्य और आकरज चार प्रकार का होता है। अग्नि आदि भौम तेज है। जल रूप इन्धन वाले तेज को दिव्य तेज कहते हैं जो बिजली आदि है। खाये गए पदार्थ के परिणाम का कारण जो तेज है उसे उदर्य कहते हैं। आकर अर्थात् खान से उत्पन्न तेज (सुवर्ण) को कहते हैं।

4. वायु :- तर्कसंग्रह के अनुसार नौ द्रव्यों में चतुर्थ द्रव्य वायु है। यह मूर्त द्रव्य है। इसका लक्षण बताते हुए अन्नं भट्ट कहते हैं – ‘रूपरहितस्पर्शवान्वायुः’। अर्थात् जिस द्रव्य में रूप नहीं है और स्पर्श रहता है, उसे वायु कहते हैं। यह वायु नित्य और अनित्य के भेद से दो प्रकार का होता है। नित्य वायु परमाणुरूप होता है जबकि अनित्य वायु कार्यरूप। शरीर, इन्द्रिय और विषय के भेद से अनित्य वायु पुनः तीन प्रकार का होता है। वायु का शरीर वायुलोक में रहता है। वायु का इन्द्रिय स्पर्श को ग्रहण करने वाला त्वक् है और वह समस्त शरीर में रहता है। तेज का विषय वृक्ष आदि के कम्पन का हेतु है। शरीर के भीतर चलने वाले वायु को प्राण कहते हैं। वह एक ही है। उपाधि भेद से प्राण, अपान, समान, उदान औ व्यान इन नामों को प्राप्त करता है। प्राणवायु हृदय में, अपानवायु गुदा में, समानवायु नाभिमण्डल में, उदानवायु कण्ठदेश में और व्यानवायु समस्त शरीर में रहता है। कहा भी गया है –

“हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले। उदानः कण्ठदेशस्थो व्यानः सर्वशरीरगः।।”

5. आकाश :- तर्कसंग्रह के अनुसार नौ द्रव्यों में पंचम द्रव्य वायु है। यह विभू द्रव्य है। इसका लक्षण बताते हुए अन्नं भट्ट कहते हैं – “शब्दगुणकमाकाशम्”। अर्थात् ‘शब्द’ गुण वाले द्रव्य का नाम आकाश है। यह आकाश नामक द्रव्य एक, विभू और नित्य होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जो शब्द का समवायिकारण है, वह आकाश है। जो सम्पूर्ण

मूर्तद्रव्यों का संयोगी है, उसे विभू कहते हैं। तर्कसंग्रह के अनुसार आकाश नामक द्रव्य विभू अर्थात् समस्त मूर्तद्रव्यों का संयोगी है।

6. काल :- “अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः। स चैको विभुर्नित्यश्च।” अतीत आदि व्यवहार के कारण को काल कहते हैं। तर्कसंग्रह के अनुसार यह छठा द्रव्य है। अतीत आदि से तात्पर्य भूत,वर्तमान और भविष्यत् से है। यह काल नामक द्रव्य एक, विभू और नित्य होता है।

7. दिक् :- “प्राच्यादिव्यवहारहेतुर्दिक्। सा चैका नित्या विभ्वी च।” अर्थात् प्राची आदि व्यवहार के कारण को दिक् कहते हैं। तर्कसंग्रह के अनुसार यह सप्तम द्रव्य है। प्राची आदि से तात्पर्य पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि दश दिशाओं से है। तर्कसंग्रह के अनुसार वह दिक् एक है, नित्य है और विभू है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि प्राची आदि व्यवहार के असाधारण कारण को दिक् कहते हैं।

8. आत्मा :- ज्ञान के आश्रय को आत्मा कहते हैं। तर्कसंग्रह के अनुसार यह आठवाँ द्रव्य है। जीवात्मा और परमात्मा के भेद से यह दो प्रकार का होता है। उनमें परमात्मा समर्थ और सर्वज्ञ एक ही है। जीवात्मा प्रत्येक शरीर में भिन्न विभू और नित्य होता है। अन्नं भट्ट अपने ग्रन्थ तर्कसंग्रह में लिखते हैं – “ज्ञानाऽधिकरणमात्मा। स द्विविधो – जीवात्मा परमात्मा च।”

9. मन :- सुख-दुःख आदि की प्राप्ति के साधन इन्द्रिय को ‘मन’ कहते हैं। वह प्रत्येक आत्मा में नियत होने से अनन्त, परमाणुरूप और नित्य भी है। यह मूर्त द्रव्य है। तर्कसंग्रहकार श्री अन्नं भट्ट मन नामक नवम एवं अन्तिम द्रव्य का लक्षण इस प्रकार किया है – “सुखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः।”

प्र०:- तर्कसंग्रह के अनुसार पदार्थ और उसके भेदों का संक्षेप में वर्णन करें।

उ०:- तर्कसंग्रह में पदार्थों का निरूपण तो वैशेषिक शास्त्र के अनुसार किया गया है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार पद से उत्पन्न प्रतीति अर्थात् ज्ञान के विषय को पदार्थ कहते हैं – “पदजन्यप्रतीतिविषयत्वं पदार्थत्वम्।” तर्कसंग्रह के अनुसार सात पदार्थ हैं – द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य(जाति), विशेष, समवाय और अभाव। श्रीमदन्नं भट्ट अपने तर्कसंग्रह में स्पष्ट कहते हैं – द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवाया-ऽभावाः सप्त पदार्थाः।

प्र०:- तर्कसंग्रह के अनुसार द्रव्य और उसके भेदों का संक्षेप में वर्णन करें।

उ०:- जिसमें द्रव्यत्वजाति रहती है अथवा जो कार्य मात्र का समवायिकारण है उसे द्रव्य कहते हैं। ग्रन्थकार अन्नं भट्ट के ही शब्दों में – “द्रव्यत्वजातिमत्त्वं समवायिकारणत्वं वा द्रव्यसामान्यलक्षणम्। तत्र द्रव्याणि – पृथिव्यप्तेजो –वाय्वाकाश –काल-दिगात्मा-मनांसि नवैव।” द्रव्य नौ हैं – 1. पृथिवी 2. जल 3. तेज 4. वायु 5. आकाश 6. काल 7. दिक् 8. आत्मा और 9. मन।

प्र०:- तर्कसंग्रह के अनुसार गुण और उसके भेदों का संक्षेप में वर्णन करें।

उ०:- “द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवत्त्वं गुणसामान्यलक्षणम्।” अर्थात् द्रव्य और कर्म से भिन्न होकर जिसमें सामान्य रहता है, उसे गुण कहते हैं। तर्कसंग्रह के अनुसार गुण चतुर्विंशतिः (24) हैं – रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार। “रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-संख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभाग-परत्वाऽपरत्व-गुरुत्व-द्रवत्व-स्नेह-शब्द-बुद्धि-सुख, दुःखेच्छा-द्वेष-प्रयत्न-धर्माऽधर्म-संस्काराश्चतुर्विंशतिर्गुणाः।”

प्र०:- तर्कसंग्रह के अनुसार कर्म और उसके भेदों का संक्षेप में वर्णन करें।

उ०:- संयोग से भिन्न होकर जो संयोग का असमवायिकारण है, उसे कर्म कहते हैं। तर्कसंग्रह के अनुसार उत्क्षेपण, अपक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण और गमन ये पाँच कर्म हैं। “उत्क्षेपण-अपक्षेपणाऽऽकुञ्चन-प्रसारण-गमनानि पञ्च कर्माणि।” ऊपर की ओर फेंकना उत्क्षेपण, नीचे की ओर फेंकना अपक्षेपण, समेटना आकुंचन, फैलाना प्रसारण और चलना गमन नामक कर्म कहलाता है।

प्र०:- तर्कसंग्रह के अनुसार प्रमाण और उसके भेदों का उल्लेख करें।

उ०:- तर्कसंग्रहकार अन्नंभट्ट प्रमाण का लक्षण करते हुए कहते हैं – “प्रमाकरणं प्रमाणम्।” अर्थात् प्रमा के कारण को प्रमाण कहते हैं। प्रमा को अनधिगत, अबाधित तथा समृतिज्ञान से रहित होना चाहिए। यथार्थज्ञान जिसके द्वारा होता है, उस ज्ञान का साधन ‘प्रमाण’ कहलाता है। इसके चार भेद हैं –

1. प्रत्यक्ष
2. अनुमान
3. उपमान
4. शब्द

प्र०:- तर्कसंग्रह के अनुसार कारण और उसके प्रकार का संक्षेप में वर्णन करें।

उ०:- तर्कसंग्रह एक प्रकरण ग्रन्थ है। दो समान तन्त्रों का आश्रय लेकर जो लघुग्रन्थ लिखे गए हैं उन्हें प्रकरण ग्रन्थ कहा जाता है। इसमें दो में से किसी एक शास्त्र की प्रधानता तथा दूसरे की अप्रधानता होती है। एक शास्त्र के सिद्धान्त को मुख्य आधार मानकर उसमें उसके समानतन्त्री दूसरे शास्त्र के सिद्धान्तों का समावेश किया जाता है। तर्कसंग्रह में वैशेषिक शास्त्र की प्रधानता तथा न्यायशास्त्र की अप्रधानता का समावेश है।

तर्कसंग्रह में पदार्थों का निरूपण तो वैशेषिक शास्त्र के अनुसार तथा प्रमाणों का निरूपण न्यायशास्त्र के अनुसार किया गया है। अत्यन्त लघुकाय होने पर भी प्रस्तुत ग्रन्थ न्याय-वैशेषिक शास्त्रों का प्रामाणिक ग्रन्थ है।

तर्कसंग्रह के प्रणेता तैलंगवंशीय ब्राह्मण पण्डित अन्नं भट्ट हैं। इनकी स्थितिकाल 17वीं शताब्दी है। इन्होंने स्वयमेव इस पर "दीपिका" नाम की टीका लिखी है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का पतिपाद्य विषय द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये सप्त पदार्थ हैं, जिनका अत्यन्त बोधगम्य शैली में बालानां सुखबोधाय' निरूपण किया है।

कार्य की उत्पत्ति के पूर्व नियत रूप से उपस्थित रहने वाला तत्त्व 'कारण' कहलाता है – "कार्य-नियतपूर्ववृत्तिकरणम्।" यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि कार्योत्पत्ति से पूर्व वर्तमान कुम्भकार का पिता, वनस्थ दण्ड, गधा, बैलगाड़ी इत्यादि घट (कार्य) के प्रति कारण नहीं हो सकते, क्योंकि वे पूर्ववर्ती तो हैं परन्तु नियतपूर्ववर्ती नहीं हैं। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त परिभाषा में एक दोष रह जाता है दण्डरूप और दण्डत्व जाति आदि कार्योत्पत्ति के प्रति अन्यथा सिद्ध हैं, जो कार्यनियतपूर्ववर्ती होने से कारण कहलाने लगेंगे, जबकि वे कारण नहीं हैं। अतः लक्षण में अन्यथासिद्ध पद जोड़ना होगा – "अन्यथासिद्धशून्यत्वे सति कार्यनियतपूर्ववृत्तित्वम् कारणत्वम्।" इस प्रकार दण्ड के साथ दण्डत्व जाति का परिहार (वारण) हो जाएगा।

तर्कसंग्रह के अनुसार 'कारण' तीन प्रकार का है –

1. समवायिकारण :- "यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम्। यथा तन्तवः पटस्य।"

अर्थात् जिसमें समवाय सम्बन्ध से कार्य उत्पन्न होता है, उसे समवायिकारण कहते हैं, जैसे – तन्तु पट के प्रति समवायिकारण है। यहाँ तन्तु अवयव तथा पट अवयवी है। इनका सम्बन्ध समवाय है। अतः तन्तु समवायी है तथा पट उसमें समवेत है। समवायसम्बन्ध गुण-गुणी, अवयव-अवयवी, जाति-व्यक्ति, क्रिया-क्रियावान् तथा विशेष-नित्यद्रव्यों में पाया जाता है।

2. असमवायिकारण :- "कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतं सत् कारणम् असमवायिकारणम्। यथा तन्तुसंयोगः पटस्य। तन्तुरूपं पटरूपस्य।" अर्थात् कार्य के साथ-साथ अथवा कारण के साथ-साथ एक पदार्थ (अधिकरण) में समवाय सम्बन्ध से रहने वाला कारण, असमवायिकारण कहलाता है, जैसे- तन्तुओं का संयोग, पट का असमवायि कारण है, इसी प्रकार तन्तुरूप, पटरूप के प्रति असमवायिकारण है।
3. निमित्त कारण :- "तदुभयभिन्नं कारणं निमित्त कारणम्। यथा तुरीमेवादिकम् पटस्य।" अर्थात् समवायि और असमवायि (इन दोनों) से भिन्न कारण निमित्तकारण की श्रेणी में आते हैं। जैसे - तुरी-वेमादि पट के प्रति तथा दण्ड, चक्र आदि घट के प्रति निमित्त कारण हैं।
